चारु चंद्रलेख : जनशक्ति के संगठन की अद्भुत रचना

आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी हिन्दी के उन प्रमुख साहित्यकारों में से एक हैं जिन्हें आधुनिक हिन्दी का निर्माता कहा जा सकता है। वे हिन्दी साहित्य के एक ऐसे आलोक स्तम्भ हैं, जिन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओं को आलोकित किया। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व में एक साथ एक संवेदनशील कवि, एक श्रेष्ठ निबन्धकार, एक समर्थ आलोचक, एक सफल उपन्यासकार एवं सम्पादक, एक गम्भीर शोधकर्ता तथा छात्रवत्सल आचार्य की छवियों का दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त वे एक सूक्ष्म निरीक्षण शक्तिसम्पन्न साहित्येतिहास लेखक और साहित्यशास्त्र के मर्मज्ञ विद्वान भी है।

'चारु चंद्रलेख' उपन्यास 1963 ई. में प्रकाशित हुआ। इसमें बारहवीं शताब्दी के उत्तरभारत की राजनैतिक एवं सामाजिक अव्यवस्था की गाथा कही गई है। उपन्यास की मुख्य कथा राजा सातवाहन एवं रानी चंद्रलेखा के इर्द-गिर्द ही घूमती है। राजा सातवाहन के जीवन में चंद्रलेखा का प्रवेश एक नाटकीय ढंग से होता है। तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों में रानी चंद्रलेखा ने राजा को जनकल्याण एवं भारत की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए, विदेशियों के आक्रमण का प्रतिशोध करने के लिए प्रेरित किया। प्रेरणा देकर रानी स्वयं कोटिभैरवी रससिद्धि-प्राप्ति की वाममार्गी साधना में लीन हो जाती है और राजा इधर-उधर मारा-मारा भटकता हुआ अपने अन्य सहायकों के द्वारा जन-संगठन का कार्य करने का प्रयत्न करता है। राजा को इस कार्य में सबसे बड़ी बाधा वाममार्गी साधकों की है। समाज में इन सिद्धियों, रूढियों, आडम्बरों का इतना आतंक है कि जनता ही नहीं राजा भी बाहुबल का आश्रय छोड़कर इन सिद्धियों पर विश्वास करने लगते हैं। उपन्यास की समाप्ति मैना (मौनसिंह) की मृत्यु से होती है।

प्रस्तुत उपन्यास में द्विवेदी जी ने १२ वी शताब्दी की राजनीतिक और सामाजिक स्थिति का चित्रण बड़ी ईमानदारी के साथ किया है। देश के उत्तरी भाग पर तुर्कों का शासन स्थापित हो चुका था। दक्षिण में गोपाद्रि दुर्ग तक वे पहुँच गये थे और भी आगे बढ़कर पैर जमाने की कोशिश में थे। शाकम्भरी

का ब्राह्मण नरेश, कान्यकुब्ज का जयित्रचंद्र अपना पूर्ण वैभव खो चुके थे। कान्यकुब्ज की सम्पूर्ण सेना अपनी शक्ति खो चुकी थी। आर्यावर्त की राजनीतिक स्थिति को दर्शाता राजा का कथन इस प्रकार है..

"सम्पूर्ण आर्यावर्त मेरी आँखों के सामने ध्वस्त हो रहा है। यहां के मंदिर और मठ, वृध्द और बालक, ब्राह्मण और श्रमण अनाथ, पंगु और भयत्रस्त है। किसी के जीवन का कोई मूल्य नहीं है। एक-एक करके क्षत्रिय राज्य विदेशियों के प्रचण्ड प्रहार से जर्जर और भूलुंठित होते जा रहे हैं।"[1]
(हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथावली- पृ 315 भाग- 1)

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता है कि राजनीतिक दृष्टि से खण्ड-खण्ड, अखण्ड-भारत का एक खण्ड, तो विदेशियों के द्वारा अधिकृत कर ही लिया गया था। शेष भारत के नरेश मिथ्याकुलाभिमान और पारंपारिक द्वेष के कारण इन मुट्ठी भर संगठित विदेशियों पर विजय प्राप्त करने में अक्षम थे। किसी भी राजा के पास यथेष्ट सेना नहीं थी। स्वयं राजा सातवाहन के पास गिने चुने लगभग एक हज़ार ही सैनिक थे। स्थाई सैनिकों के अभाव में योगियों और साधुओं की सेना तैयार करने का प्रयत्न किया जा रहा था। राजाओं के राजकोष खाली होने के कारण सैनिक उनका साथ छोड़ रहे थे। राजा और प्रजा दोनों का मनोबल गिरा हुआ था। जब एक राज्य पर विदेशी आक्रमण करते थे तो दूसरे देशी राजा उनका साथ देना तो दूर विदेशियों का ही साथ देना पसंद करते थे। जयित्रचंद्र की पत्नी सूहवदेवी के सहयोग से ही मुहम्मद ग़ोरी आसानी से काशी-कान्यकुब्ज के राज्य को अपने कब्ज़े में ला सका। इसप्रकार सम्पूर्ण आर्यावर्त में राष्ट्रीयता, संगठन एवं एकता का अभाव था।

प्रजा तन्त्र -मन्त्र, जादू-टोने, सिद्धियों-ऋद्धियों पर विश्वास करने के लिए विवश थी। किन्तु ये सिद्ध, आक्रमणों से अपनी रक्षा करने में स्वयं असमर्थ थे। तपस्वी मिक्षिलपाद, सिद्धों के मिथ्याभाषी, ढोंगी और चमत्कारी रूप का पर्दाफाश करते हुए अमोघवज्र से कहते है.. "आज मैं समूचे मगध में एक मनुष्य ऐसा नहीं देख रहा हूँ जो हमारी सहायता कर सके। साधारण प्रजा हमें सिद्ध समझती रही है। आज आततायी के खड्गाघात से सिद्धियों का यह सारा खिलवाड़ टूटकर गिर गया है.. आज भी हमारे विहार के ढोंगी

साधक मन्त्र बल से तुर्कों की सेना उड़ा देने की गप्पों पर विश्वास करते हैं।"[2] (वही : पृ 376)

उपन्यासकार विषम राजनीतिक स्थिति का वर्णन करने से ही सन्तुष्ट नहीं होता, वरन् उन कारणों का भी निर्देश करता है जो इस राजनीतिक पतन के मूल में थे। इस उपन्यास में आर्यावर्त के विदेशियों द्वारा पदाक्रान्त होने का प्रमुख कारण सामान्य जनता की राजनीतिक उदासीनता, जातिभेद तथा वर्गभेद आदि बताए गये हैं। यह एक विश्वसनीय एवं स्वीकृत ऐतिहासिक तथ्य है। द्विवेदीजी ने इस ऐतिहासिक परिदृश्य का अंकन मार्मिक प्रसंगों और संवेदनशील भाषा द्वारा किया है।

यहीं प्रश्न उठता है कि इस विशृंखलता से दो-चार होने का उपाय क्या है ? द्विवेदी जी ने इतिहास के अनुभव से ही वह उपाय प्रस्तुत किया है। वे जानते थे कि जन-जागृति के बिना कोई परिवर्तन सम्भव नहीं है। वे यह भी जानते है कि राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों की आशा पर निश्चेष्ट बने रहने का परिणाम निश्चित पराभव है। इस तथ्य को उपन्यास में जन-शक्ति के माध्यम से स्पष्ट किया गया है।

इस उपन्यास के माध्यम से लेखक ने कोटि-कोटि जनता का मनोबल ऊँचा करके, उसकी शक्ति और सामर्थ्य को उत्तेजित कर विदेशी आततायियों और आक्रान्ताओं के विरूद्ध संगठित होकर, बाहुबल से लड़ने का आह्वान किया है। योगियों की सिद्धियों का विरोध करते हुए उन्हें एकजुट होकर अत्याचार का सामना करने के लिए प्रेरित करते हुए गोरक्षनाथ कहते हैं..

" इतना स्मरण रखें कि आपकी साधना अकेले की साधना नहीं हो सकती। समस्त जगत के दुःख-सुख, हास्य-रोदन आपको प्रभावित करेंगे। इसलिए आप जलते हुए शस्य क्षेत्रों की उपेक्षा नहीं कर सकते, टूटते हुए मन्दिरों से आँख नहीं मूँद सकते, ललकते हुए शिशुओं और घिघियाते हुए वृद्धों की ओर से कान नहीं बंद कर सकते। आप संगठित होकर ही अत्याचार का विरोध कर सकते हैं।"[3] (वही पृष्ठ 358)

जब तुर्क सेना भारत पर आक्रमण करती है, तब विद्याधर भट्ट,

जनशक्ति के बल पर ही तुर्कों पर विजय प्राप्त करते है। इस सन्दर्भ में विद्याधर जनशक्ति की प्रशंसा करते हुए राजा सातवाहन से कहते हैं...

"तुमने जिन किसानों और साधारण प्रजावर्ग के लोगों को मेरी सहायता के लिए भेजा था, उनके करतब देखकर मैं चकित हूँ। भैंस चरानेवाले बालकों ने, अज्ञात कुलशील पत्थर तोड़नेवाले श्रमिकों ने, हल चलानेवाले खेतिहरों ने, भीख माँगनेवाले निठल्लों ने, पशान्नपुष्ट रूंडमुंड साधुओं ने, नाचगान से जीवन-यापन करनेवाली नर्तकियों ने, रस्सों पर खेल दिखानेवाले नटों और नटिनियों ने अद्‌भुत देशभक्ति का परिचय दिया है।"(वही पृष्ठ 358) मैना की ग्रामीण सेना, तुर्कों तथा उनके सहायक घुंडकों की सेना से युद्ध में जो करतब दिखाती है, वह जनशक्ति का ही प्रतीक है। यही जनशक्ति का एक रूप हमें 1857 की क्रान्ति में दिखाई देता हैं। इसमें भी किसानों, वेश्याओं और आम जनता ने अहम भूमिका निभाई थी।

इसी के साथ प्रस्तुत उपन्यास में रचनाकार ने, अतीत ही नहीं, प्रत्युत एक शाश्वत सत्य का उद्‌घाटन किया है कि प्रजा उसी राजा का साथ देती है जो प्रजा के सुख -दुख का ध्यान रखता है। उपन्यास में देश का नेतृत्व करनेवाले कर्णधारों के कर्तव्यबोध को राजा सातवाहन के माध्यम से दर्शाया है। राजा सोचता है कि.. "मुझे ऐसा लगता है कि श्रद्धा चर्चित अनुगामिता ही राजा का यथार्थ आदर्श है.. राजा उस समय वही कहा जायेगा जो लोकसेवक होगा। सेवा भावना ही कदाचित उत्तम नेतृत्व का रूप ग्रहण करती है।"

'चारू चन्द्रलेख' का प्रणयन, भारत पर चीन-आक्रमण के आसपास हुआ। अतः प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस पर, उसका प्रभाव देखा जा सकता है क्या 62-63 के मध्य देश के नेताओं, कर्णधारों में आत्मविश्वास की कमी आ गई थी या उनमें विचार मतैक्य का अभाव था या अपने उस भारतदेश की स्वतंत्रता को बचाने ही में वे असमर्थ थे जिसे हमारे देश के महापुरूषों ने अपना बलिदान देकर हमें सौंपा था।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि देश की स्वतंत्रता और स्वाभिमान की रक्षा तंत्र-मंत्र और सिद्धियों से नहीं प्रत्युत आत्म-बलिदान से की जा सकती है। मात्र सोचना और समझना निर्वीय और निठल्ले लोगों का कार्य है। स्वतंत्रता

और राष्ट्ररक्षा के लिए प्राणों की आहुति देने से भी हिचकिचाना नहीं चाहिए। हमारा यह शरीर समाप्त हो सकता है किन्तु इसका लाभ आनेवाली पीढ़ियों को अवश्य मिलेगा। इस तरह हमारी आत्मा को शान्ति मिलेगी। सीदीमौला को फटकारता हुआ, विद्याधर तथा महाराज सातवाहन को युद्ध के लिए प्रेरित करता हुआ मौनसिंह (मैना) कहता है.. " इन बकवादी निठल्ले सिद्धों के चक्कर में मत पड़ो। ये बिगाड़ना जानते है, संवारना नहीं जानते हैं। ये क्या जानते हैं कि देश-रक्षा का अर्थ है व्यक्ति का बलिदान।.. महाराज मेरा धैर्य समाप्त हो गया है। उठो! आँधी की तरह बहो, बिजली की तरह कड़को, मेघ की तरह बरसो। हमें अपनी पसलियों को जलाकर प्रकाश शिखा को जला देना है। जलने दो, जलने दो, इस प्रदिप्त शिखा को। गृहस्थ का बलिदान एक पीढ़ी के लिए नही होता आनेवाली पीढ़ियाँ प्रकाश पा जाएँ इतना बहुत है।"[3] (वही -पृ 445-446)

उपन्यास में यह तथ्य उजागर होता है, कि मातृभूमि की रक्षा करना किसी जाति विशेष अथवा राजा का ही पेशा नहीं है। इस दुस्तर कार्य को जनसहयोग के बिना पूर्ण नहीं किया जा सकता। मातृभूमि की रक्षा करना समस्त प्रजा का जन्म-सिद्ध अधिकार एवं धर्म है। सैनिकों एवं प्रजा को सम्बोधित करते हुए रानी चन्द्रलेखा कहती है.. "तुम्हारी आँखों के सामने देखते-देखते सारा देश छत-दर्प, छिन्न -विछिन्न और पराजित दिखाई दे रहा है।" .. प्रजा समझती है कि लड़ाई करना राजा और राजपुत्रों का धर्म है। शेष प्रजा निश्चेष्ट चुपचाप बैठी रहती है। लड़ाई जिनका धर्म माना जाता है, वे जब हार जाते हैं, तो प्रजा भी हार मान लेते है।..युद्ध में सफलता तभी मिल सकती है जब समूची प्रजा में आत्मगौरव और प्रतिरोध की भावना उत्पन्न हो।"[4] (वही -पृ 333)

जनशक्ति में नारी की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, इस दृष्टि से यह उपन्यास महत्वपूर्ण बन जाता है। 'चारू चन्द्रलेख' उपन्यास में 'चन्द्रलेखा', 'मैना' और 'नाटीमाता' इन तीनों नारियों का जीवन दुखों से परिपूर्ण है। लेकिन इसके बावजूद तीनों में अद्भुत चेतना एवं साहस है। उपन्यास की मैना चेतना सम्पन्न पात्र है। वह परम सुन्दरी है, इसीलिए पुरूषप्रधान समाज में, अपने

बचाव के लिए, वह पुरूष वेश में रहती है, मैनसिंह छद्म नाम से। उसमें राष्ट्रप्रेम कूट कूट कर भरा है। अपने देश के लिए त्याग और बलिदान को ही वह सबकुछ मानती है। मध्ययुगीन युद्ध के वातावरण में वह राजा सहित सभी पुरूषों को युद्ध के लिए प्रेरित करती है। ऐसा लगता है कि उसका जीवन अपने लिए नहीं, बल्कि देश की रक्षा के लिए है - इस सन्दर्भ में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।.. 'घुण्डकेशवर' के साथ युद्ध करते हुए मैनासिंह का साहस देखते ही बनता है - "विकट युद्ध हुआ। मैनासिंह की फुर्ती और कौशल देखने ही लायक था। वाह कैसा अद्भुत साहस है, कैसी फुर्ती है।"[5] (वही -पृ 421)

मैना वीरों को प्रेरित करती हुई उनके कर्तव्यबोध को जगाती हुई, कहती है .. " अल्हड़ वीरों को कितनी देर तक विश्राम करना चाहिए।"[6] (वही -पृ 435)इसके साथ ही मैना राजा को इनके कर्तव्यबोध का स्मरण कराती हुई कहती है .. "क्षमा करें महाराज, ऐसे नहीं चलेगा। वे लोग हमारे ऊपर आक्रमण करते रहे और हम लोग बचाव करते रहे यह ठीक नहीं है। मुझसे अब यह नहीं सहा जाता ".. मैं चाहती हूँ कि आप इन उद्धत अनुचरों को लेकर सीधे दिल्ली पर टूट पड़ो। साहस में सिद्धि बसती है महाराज।.. उठो! महाराज, प्रचण्ड आँधी की भाँति बहो। मैना नें क्रुद्ध सर्पिणी की तरह फुफकार कर कहा, "कायरों और कमीनों को शरण देनेवाले गढ़ पर धक्का मारो।"[7](वही -पृ 437)

इसी प्रकार की अदम्य साहस एवं जिजीविषा रानी चन्द्रलेखा में भी है। क्षीण अवन्तिका नरेश, सातवाहन को वह देश-रक्षा एवं चक्रवर्ती राजा बनने के लिए प्रोत्साहित करती हुई कहती है .. "किन्तु रानी चन्द्रलेखा तुम्हें आश्वासन देती है कि तुम्हें निराश नहीं होना पड़ेगा। मैं तुम्हारे पीछे प्रजावर्ग को संगठित करने के लिए प्रयत्न करने जा रही हूँ। वीरों के अच्छे धर्म के लिए लड़ो। हार और जीत इतिहास विधाता के इंगित के अनुसार होती है। मनुष्य की सार्थकता और सफलता प्रयत्न करने में है।"[8] (वही -पृ 334) इसी प्रोत्साहन से राजा युद्ध करते है और विजय प्राप्त करते है।... "रानी की योजना चरितार्थ हुई। समस्त मालव जनपद में एक अद्भुत नवजीवन जाग उठा। शत्रु को लौट जाना पडा।"[9] (वही -पृ 335) गोपाल राय, चन्द्रलेखा रानी और मैना की तुलना करते हुए लिखते है.. "तत्कालीन भारतीय समाज

नाना प्रकार की रूढियों, अन्धविश्वासों, तर्कशून्य मान्यताओं आदि से ग्रस्त होकर क्षीण शक्ति हो रहा था। मन्त्र-तन्त्र, ग्रह-नक्षत्र और अनेक प्रकार की सिद्धियों में लोगों का विश्वास इतना बढ़ गया था, कि कर्म और पौरूष की महिमा ही लुप्त हो चली थी। झूठे विश्वासों और पाखंड का इतना बोलबाला था कि 'चारू चन्द्रलेख' की नायिका रानी चन्द्रलेखा जैसी प्रबुद्ध नारी भी सिद्धियों के मायाजाल में भटक जाती है। इसके विपरीत मैना सिद्धों और योगियों को देखते ही भड़क उठती है।"[10] (प्रो. गोपालराय : 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' पृ.283)

स्वतंत्रता के पश्चात भी हम कुछ पुराने राजाओं और कुछ नए सामंतों के हाथों में देश की बागडोर सौंपकर निश्चिन्त हो गए हैं। बीच-बीच में देवपुत्रों की कृपा का फल भी जनता चखती रही है। इसका परिणाम 1962-63 और आज भी हम देख ही रहे हैं। प्रजातंत्र(?) की आज जो स्थिति है वह इन नए राजाओं, राजपुत्रों और देवपुत्रों के भरोसे बदलने वाली नहीं है। वह बदलेगी तो विराट जन जागृती से ही।

'चारू चन्द्रलेख' टूटते-बिखरते मध्यकालीन समाज की मानसिक टूटन का और शेष शक्तियों को संयमित कर सम्पूर्ण बल के साथ विरोधों के सामने डटने के संकल्प का महाकाव्यात्मक निरूपण है। सातवाहन के रूप में युद्धरत भारतीय शक्ति आगे चलकर अपनी अन्तःप्रेरणाओं को खोकर गरिमाच्युत होती है। लेकिन आचार्यजी ने इस अतीत, इस इतिहास का निरपेक्ष चित्रण नहीं किया है। बल्कि उसके माध्यम से वह उद्बोधनात्मक उर्जा प्रवाहित की है, जो किसी जाति के अस्तित्व के लिए अनिवार्य है। 'चारू चन्द्रलेख' उपन्यास के एक-एक पृष्ठ से आह्वान का स्वर भी गुंजित होता है, जो सैंकड़ों वर्षों के बाद भी भारतवासियों की नसों में नए रक्त का संचार करता रहेगा। सदैव सजग एवं जागृत करता रहेगा।

डॉ. इशरत खान,
रीडर (हिन्दी विभाग),
गोवा विश्वविद्यालय,
तलेगॉव - गोवा।